The Sameeksha (समीक्षा) Global: A Multidisciplinary Journal in Hindi
Vol. 3, Issue 1 - 2019

मैनेजर पाण्डेय की साहित्येतिहासिक दृष्टि

डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय[1]

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव,
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर, कोरिया (छ.ग.)

साहित्य अपने अन्तरतम में बड़ा ही विराट कलेवर संजोए हुए हैं। आज तक न तो इसके स्वरूप का समुचित मूल्यांकन हो पाया है और न ही इसके प्रयोजन का। इसका सबसे प्रमुख कारण दृष्टिकोणों की विभिन्नता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से इसे परिभाषित और व्याख्यायित करने की एवं इसे स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा विज्ञ समुदाय द्वारा समय-समय पर चलती रहती है। साहित्य का अपना एक इतिहास भी होता है और मूलभूत बुनियादी दर्शन भी। लेकिन आलोचना के अभाव में वह निरर्थक सा प्रतीत होता है। मेरे विचार से साहित्य के ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन के लिए उसके ऐतिहासिक स्वरूप तथा सामाजिक प्रयोजन को ध्यान में रखना आवश्यक है। मैनेजर पाण्डेय जी की भी इस सन्दर्भ में यह मान्यता है कि- ''साहित्यिक रचनाएँ इतिहास से निर्मित होती है और इतिहास का निर्माण भी करती हैं। रचना का अस्तित्व इतिहास के भीतर होता है, इतिहास के बाहर नहीं।''[1] किसी भी काल की रचनात्मक उपलब्धि से हम उस काल के इतिहास का पता आसानी से लगा सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो रचनाएँ किसी काल के इतिहास का उत्स होती हैं यानि कि रचनाएँ अनिवार्यतः उस काल के इतिहास की प्रतिनिधि होती हैं।

बिना समाज के न तो किसी इतिहास की रचना की जा सकती है और न ही किसी ऐसे सार्थक साहित्य की जो कि कालबद्ध और कालजयी हो। मैनेजर पाण्डेय जी का यह कहना कि ''कलाकृतियाँ अपने सामाजिक ऐतिहासिक सन्दर्भ की उपज होती हैं।।[2] यह अत्यन्त सटीक लगता है। किसी देश का साहित्य उस देश के समाज से अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य के उद्भव तथा विकास की व्याख्या करना साहित्य के इतिहास का मुख्य उद्देश्य होता है। ज्यों-ज्यों सामाजिक में परिवर्तन आता जाता है त्यों-त्यों साहित्य का कलेवर भी बदलता जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी बात को पुष्ट करते हुए कहा है कि ''जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[3] साहित्य का इतिहास कुछ सीमित व्यक्तियों के विवेचन का क्षेत्र न होकर रचनाकार, पाठक तथा आलोचक के लिए भी समान मात्रा में आवश्यक है क्योंकि साहित्य का इतिहास एक व्यापक जनसमुदाय की भावनाओं तथा

© Eureka Journals 2019. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-401X**

अभिरुचियों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है, अतएव इसका अवगाहन भी विशद रूप में होना चाहिए, सीमित रूप में नहीं।

साहित्य के इतिहास के प्रयोजन को बताते हुए मैंनेजर पाण्डेय जी का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि ''साहित्य के इतिहास का प्रयोजन साहित्य के विकास की गति और दिशा का बोध कराना है।''[4] यानी कि साहित्य के विकास की गति कैसी है और यह किस सार्थक या निरर्थक दिशा में जा रहा है यह साहित्य के इतिहास को परखने का एक महत्त्वपूर्ण खाका हो सकता है। साहित्य रचने के लिए साहित्यकार को साहित्य के लिखने या रचने का विवेक होना चाहिए, साथ ही ऐतिहासिक ज्ञान भी। बिना तत्कालीन ऐतिहासिक ज्ञान तथा जनसमाजोन्मुखी दृष्टि विकसित किये सर्जनशील साहित्य नहीं रचा जा सकता। अतः मुकम्मल साहित्य लेखन के लिए इन दोनों ही चीजों का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैंनेजर पाण्डेय जी कहते हैं कि ''साहित्य विवेक के विकास के लिए इतिहासबोध आवश्यक है। इतिहासबोध के बिना साहित्यविवेक अंधा होगा और साहित्यविवेक के बिना इतिहास बोध लंगड़ा।''[5] इस प्रकार रचनाकार की ऐतिहासिक चेतना रचना की अन्तर्वस्तु तथा उसकी मूल्यवत्ता को निर्धारित करती है।

साहित्य के मूल्य में परिवर्तन सामाजिक मूल्यों के कारण ही आता है। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होगा तभी साहित्य के कलेवर में भी परिवर्तन आयेगा।'' साहित्य और समाज के इस आपसी सम्बन्ध का बोध जगाने वाला इतिहास लेखन ही समाज और साहित्य के इतिहास के निर्माताओं के लिए उपयोगी हो सकता है।''[6] साहित्य के विकास प्रक्रिया की निरन्तरता साहित्य के इतिहास का आधार है। ''किसी काल के साहित्य में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं होता जो अतीत और भविष्य से पूर्णतः विच्छिन्न हो।''[7] नयी चीज नवीन होती हुई भी कहीं न कहीं प्राचीन से सम्बन्ध अवश्य रखती है। ''हर नया आन्दोलन अतीत से मुक्ति की बात करता हुआ भी नया होने के बावजूद इतना नया नहीं होता कि अतीत से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो।''[8] इसलिए साहित्येतिहास लेखन में नवीन सिद्धान्तों के पोषण के लिए अतीत की नींव का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना अतीत की नींव के भविष्य का नवीन भवन आधारहीन ही सिद्ध होगा।

साहित्य में परम्परा तथा परिवर्तन में द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होता है। परम्परा जहाँ एक ओर सामाजिक होती है वहीं दूसरी ओर भाषिक भी। इसी को व्याख्यायित करते हुए मैनेजर पाण्डेय जी कहते हैं कि ''साहित्य की परम्परा का सम्बन्ध एक ओर सामाजिक परम्पराओं से होता है और दूसरी ओर भाषा की परम्परा से। सामाजिक जीवन, जीवनानुभव और भाषा का गतिशील सम्बन्ध ही साहित्य में परिवर्तन और निरन्तरता की सम्बद्धता का कारण है।''[9] परिवर्तन और निरन्तरता जहाँ साहित्य के इतिहास के अनुशीलन के लिए

© Eureka Journals 2019. All Rights Reserved. ISSN: 2581-401X

जितने आवश्यक हैं उससे कम आवश्यक ''नवीन प्रयोगों की विशिष्टता और परम्परा का सम्बन्ध नहीं है। इसके वस्तु तथा रूप दोनों में ही नित्य नये प्रयोग होते रहते हैं लेकिन ''वस्तु या रूप सम्बन्धी वही प्रयोग सार्थक हैं जो नये प्रयोगों के लिए प्रेरक बन सकें।।[10]

इतिहास लेखन के लिए समाज तथा साहित्य के वर्तमान तथा वास्तविक स्वरूपों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना वर्तमान साहित्यिक सामाजिक ज्ञान के हम अतीत की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता तय नहीं कर पायेंगे। इसी कारण से साहित्येतिहास का उद्देश्य रचना की उत्पत्ति तथा उसकी वर्तमान अर्थवत्ता का विश्लेषण करना प्रमुख हो जाता है। रचना के अतीत और वर्तमान का यह सम्बन्ध कालजयी कृतियों के निर्धारण का एक प्रमुख मानदण्ड बन जाता है। ''कालजयी कृतियों को प्रत्येक पीढी अपनी युगीन चेतना और मानसिकता के अनुसार ग्रहण करती है और जो कृति जिस सीमा तक परवर्ती पीढ़ियों और युगों की मूल्यदृष्टि और कला चेतना को सन्तुष्ट कर पाती है, वह उसी सीमा तक सार्थक बनी रहती है।''[11] हर कृति कालजयी कृति नहीं होती। वही कृति कालजयी होती है जो अपनी वर्तमान अर्थवत्ता को किसी न किसी रूप में कायम रखती है तथा वर्तमान जनसामान्य की भावना कहीं न कहीं उसमें अवश्य प्रतिबिम्बित हो यानि की उसमें युग सापेक्ष दृष्टि का होना अत्यन्त आवश्यक है। समकालीन जीवन से असम्बद्ध तथा परम्परा और परिवेश से शून्य होकर कोई कृति कालजयी नहीं हो सकती। इतिहास दृष्टि को ठीक ढंग से न समझ पाने का ही परिणाम अतीत और वर्तमान का अलगाव है।

साहित्य के इतिहास में अन्तर्वस्तु तथा रूप को लेकर दो दृष्टिकोण विकसित हुए एक वस्तुवादी दूसरा रूपवादी। मैनेजर पाण्डेय जी का मानना है कि ''वस्तुवादी इतिहासकार रचना में वस्तु को केन्द्रीय महत्त्व देकर साहित्य के विकास के दौरान वस्तु सम्बन्धी परिवर्तनों की ही व्याख्या करते हैं। वे अन्तर्वस्तु के सन्दर्भ में ही नये पुराने का सम्बन्ध देखते-परखते हैं। जबकि रूपवादी इतिहासकार साहित्य के इतिहास को साहित्य रूपों का इतिहास मानते हैं, वे रूप को स्वायत्त और पूर्ववर्ती रूपों से उत्पन्न मानते हैं न कि अन्तर्वस्तु से विकसित।''[12] इस प्रकार रूपवादी इतिहासकारों की यह धारणा है कि रूप वस्तु को रूपान्तरित कर लेता है। रूपवादी सर्वथा नये रूपों को विकसित करने वाली रचना को सर्जनात्मक कोटि में रखते हैं और पुराने रूपों को स्वीकार करने वाली रचना को त्याज्य मानते हैं। जब आलोचना या इतिहास में वस्तु तथा रूप परस्पर अलग-थलग पड़ जाते हैं तब साहित्येतिहास का स्वरूप विकृत हो जाता है। अतएव रचना को उत्कृष्ट बनाने के लिये रूप तथा वस्तु में पार्थक्य न होकर आपसी संगति का होना अत्यन्त आवश्यक है। साहित्य के इतिहास में केवल रूप और वस्तु ही मुख्य नहीं होते बल्कि वह रचना में व्यक्त रचनाकार की सृजनशील चेतना का भी

© Eureka Journals 2019. All Rights Reserved. ISSN: 2581-401X

इतिहास होता है। लेकिन इन सबके रहते हुए भी रचना की केन्द्रीय वस्तु अन्तर्वस्तु ही है। इसे व्याख्यायित करते हुए मैनेजर पाण्डेय जी कहते हैं, ''वस्तु और रूप दोनों ही सामाजिक यथार्थ और इसके प्रति रचनाकार के दृष्टिकोण से प्रभावित निर्मित होते हैं, लेकिन केन्द्रीय वस्तु अन्तर्वस्तु ही है और अन्तर्वस्तु की नवीनता से ही रूप की नवीनता विकसित होती है।''[13]

साहित्य में वस्तु और रूप के पुरानेपन या नयेपन का संघर्ष सदैव चलता रहता है। वास्तव में इसी प्रक्रिया के कारण ही इतिहास का निर्माण होता है। लेकिन इस संघर्ष में इतिहास हमेशा नये वस्तु और रूप का पक्ष लेता है लेकिन ऐतिहासिक प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक मूल्य निर्धारण के लिये पुराने वस्तु तथा रूप का ज्ञान परमावश्यक है, क्योंकि नया चिन्तन एकाएक नहीं प्रारम्भ हो जाता है, उसके प्रारम्भ होने के पीछे कुछ प्राचीन मूल्यबोध अवश्य होते हैं। पाण्डेयजी का यह विचार कि ''साहित्य और कला के सन्दर्भ में ऐतिहासिक चेतना से ही नये सिद्धान्त और नई पद्धतियों का निर्माण होता है। नये और पुराने का सम्यक् बोध ऐतिहासिक चिन्तन से सम्भव होता है न कि आत्मवादी अनुभूतिवाद से।''[14] साहित्येतिहास में विचारधारा की महती आवश्यकता होती है। इससे न केवल इतिहास लेखन में दृष्टिकोण के स्वरूप का बोध होता है बल्कि मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया को जानने-समझने में सहायता मिलती है। किसी मुकम्मल विचारधारा के अभाव में इतिहास की विषयवस्तु छिन्न-भिन्न प्रतीत होती है। पाण्डेयजी का तो यहाँ तक कहना है कि ''विचार प्रक्रिया से अनुशासित साहित्येतिहास समग्र इतिहास होता है, जिसमें प्रत्येक परिवर्तन की व्याख्या होती है। इतिहास लेखन में विचारधारा की आवश्यकता स्वीकारने का अर्थ न तो साहित्य का विचारधारात्मक इतिहास लिखना है और न तो उसे विचारों का इतिहास बनाना है।''[15]

साहित्य का इतिहास चूँकि भाषिक माध्यम में होता है। इसलिए भाषा की भी इसमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह भाषा सामाजिक परम्परा की देन होती है। प्रो० वासुदेव सिंह इसके विकास को बताते हुए कहते हैं कि ''भाषा में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं-एक केन्द्रापगामी और दूसरी केन्द्राभिगामी। व्यक्ति की प्रवृत्ति केन्द्रापगामी होती है और समाज की प्रवृत्ति केन्द्राभिगामी। प्रथम प्रवृत्ति से से बोली का जन्म होता है और दूसरी से भाषा का विकास। बोली को भाषा में परिणत करने का सबसे बड़ा साधन होता है-सम्पर्क।''[16] सामाजिक सम्पर्क तथा परम्परा में बदलाव से साहित्यिक भाषा में बदलाव तथा ऐतिहासिकता में भी क्रमशः बदलाव आता जाता है। लेकिन इसमें ष्भाषा का प्रयोग नया होता है, भाषा नई नहीं होती।

इस प्रकार मैनेजर पाण्डेय जी ने साहित्येतिहास के मूल में इसे निरन्तर विकसित तथा प्रभावित करने में ऐतिहासिक सामाजिक चेतना के साथ ही परम्परा रूप और वस्तु की एकता, रचनाकार

© Eureka Journals 2019. All Rights Reserved. ISSN: 2581-401X

की रचनाशीलता, साहित्यविवेक का सम्यक्बोध, सर्जनशीलता आदि को महत्त्वपूर्ण माना है तथा इस पर अपनी सुव्यवस्थित व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। साथ ही साहित्य में परिवर्तन के सन्दर्भ में अतीत तथा भविष्य दोनों को परमावश्यक मानते हुए साहित्य का केन्द्रीय तत्त्व उसके अन्तर्वस्तु को स्वीकार किया है। उनकी ये समस्त दृष्टियाँ किसी साहित्येतिहास लेखन की समग्रता को व्यक्त करने में काफी हद तक सक्षम हैं।

संदर्भ सूची

1. पाण्डेय मैनेजर - साहित्य और इतिहास दृष्टि, आवृत्ति संस्करण-2009, वाणी प्रकाशन 21-ए. दरियागंज, नई दिल्ली, भूमिका, पृष्ठ 7
2. वही, पृष्ठ 7
3. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास (काल विभाग), छठाँ लोक भारती संस्करण-2009
4. साहित्य और इतिहास-दृष्टि, भूमिका, पृष्ठ 8
5. वही
6. वही
7. वही, पृष्ठ 9
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही, पृष्ठ 13
12. वही, पृष्ठ 14-15
13. वही, पृष्ठ 15
14. वही, पृष्ठ 17
15. वही, पृष्ठ 18
16. सिंह वासुदेव - हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (उद्भव एवं मध्यकाल), पृष्ठ 5

© Eureka Journals 2019. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-401X**